तुलसी की राजनीतिक दृष्टि

पीयूष कुमार दुबे

प्रस्तावना

आधुनिक विश्व की शासन प्रणालियों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था का स्थान सर्वोच्च है। यह शासन की वह प्रणाली है जो जनता द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के माध्यम से जनता के हित में संचालित होने का दावा करती है। लोकतंत्र की उत्पत्ति का प्रश्न आने पर उत्तर में हमें यूनान मिलता है।[1] पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा ग्रीस को विश्व का पहला लोकतांत्रिक देश माना जाता है। आधुनिक लोकतंत्र के संदर्भ में 1688 ई. में हुई ब्रिटेन की रक्तहीन क्रांति उल्लेखनीय घटना है, जिसके पश्चात् वहाँ राजतंत्र की स्थिति कमजोर हुई और संसद की सत्ता सर्वोच्च रूप में स्थापित हो गई। यह अलग बात है कि अपने इस लोकतंत्र के आवरण में ब्रिटेन आज भी राजतंत्रीय व्यवस्था को जीवित रखे हुए है और उसकी पूर्ण समाप्ति की ओर नहीं बढ़ पाया है। ब्रिटेन के बाद क्रमशः अमेरिका, फ़्रांस और रूस की क्रांतियाँ भी उल्लेखनीय हैं, जिनके फलस्वरूप ये देश लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली की दिशा में बढ़ सके। अमेरिका आज लिखित संविधान से संचालित एक व्यवस्थित लोकतांत्रिक देश के रूप में स्थापित है, तो फ़्रांस में भी लोकतंत्र की स्थिति सुदृढ़ कही जा सकती है। रूस में कहने को तो संविधान आधारित लोकतंत्र है, परंतु उसका स्वरूप पूर्णतः अधिनायकवादी हो चुका है, जहां संविधान संशोधन के माध्यम से पुतिन 2036 तक के लिए राष्ट्रपति पद सुरक्षित कर चुके हैं।[2]

यह ठीक है कि पुरातन राजतंत्रीय शासन प्रणालियों की जगह आधुनिक लोकतंत्र की प्रतिस्थापना का श्रेय पश्चिम को मिलना चाहिए, परंतु, इसी क्रम में यह तथ्य भी स्मरण रखने की आवश्यकता है कि आज का लोकतंत्र जिन मूल्यों पर आधारित है, वैसे ही मूल्यों पर आधारित शासन पद्धतियों के अनेक उदाहरण

[1] राजनीति सिद्धांत : अवधारणाएं और विमर्श, संपादक – संजीव कुमार, पृष्ठ – 121, SAGE Publication, संस्करण – 2021

[2] https://www.theguardian.com/world/2021/apr/05/vladimir-putin-passes-law-that-may-keep-him-in-office-until-2036

भारतीय वांग्मय में भी मिल जाते हैं। वैशाली का गणतंत्र[3] तो एक उदाहरण है ही, वेदों और महाभारत सहित विभिन्न भारतीय ग्रंथों में भी गणतंत्र से सम्बंधित व्यवस्थाओं, पद्धतियों और मूल्यों का उल्लेख मिलता है।[4] महाभारत के शांतिपर्व में तो स्पष्ट रूप से गणतंत्र राज्य और उसकी नीति का वर्णन आता है।[5] ऐसे में, यह कहना उचित प्रतीत होता है कि भारतीय वांग्मय में उपस्थित यह लोकतांत्रिक चेतना ही 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' की आधारशिला पर अपने महाकाव्य का भव्य भवन खड़ा करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के काव्य-सृजन में भी जहां-तहां आती रही है। वस्तुतः भारतीय ज्ञान-परंपरा में लोकतंत्र के संदर्भ में जो कुछ श्रेष्ठ उपस्थित है, उन सबका श्रेष्ठतम सारांश तुलसी के काव्य में रामराज्य का रूप लेकर अभिव्यंजित हुआ है।

जनमत की प्रधानता

लोकतंत्र का मूल उद्देश्य जनमत का सम्मान और जनता का कल्याण होता है। जिस भी प्रकार से लोगों का कल्याण सुनिश्चित हो, लोकतंत्र शासन के धरातल पर उन सब पद्धतियों और मूल्यों को धारण कर आकार लेता है। तुलसीदास के युग में शासन में जनकल्याण का भाव न के बराबर था। मुग़ल राजतंत्र की छत्रछाया में चल रही सामंतवादी व्यवस्था में जनता के लिए सुख का कहीं अवकाश नहीं था। हर तरफ शोषण, अत्याचार और भेदभाव का जोर दिखाई देता था। शोषण से त्रस्त सामान्य जन की स्थिति ऐसी थी कि पेट के आगे धर्म-अधर्म और उचित-अनुचित का कोई बोध नहीं रह गया था। संभवतः अपने युग की इस सामाजिक-सांस्कृतिक दुर्दशा की ही एक झांकी तुलसीदासजी ने कवितावली के इस छंद में प्रस्तुत की है :

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट, चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरी, अटत गहन-गन अहन अखेट की॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि, पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें, आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेट की॥[6]

---

[3] बिहार : एक सांस्कृतिक वैभव, शंकर दयाल सिंह, पृष्ठ – 38, डायमंड पॉकेट बुक्स, संस्करण – 1999

[4] भारतीय राजनीति और संसद : विपक्ष की भूमिका, सुभाष काश्यप, पृष्ठ - 9-12, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 1998

[5] भारतीय राजनीति और संसद : विपक्ष की भूमिका, सुभाष काश्यप, पृष्ठ - 9-12, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 1998

[6] कवितावली, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ – 115, गीताप्रेस, संस्करण – 2017

ऐसे समय में तुलसीदास ने भक्ति के आवरण में लपेटकर रामराज्य के रूप में शासन का वो आदर्श प्रस्तुत किया जो राजतंत्रात्मक होते हुए भी निरंकुश, स्वेच्छाचारी और अमर्यादित नहीं था, अपितु जनमत और जनहित को सर्वोच्च मानने वाला एक लोकोन्मुख शासन था। रामराज्य तुलसी के राजनीतिक आदर्श का चरम है, जिसका वर्णन रामचरितमानस के अंतिम काण्ड में आता है। परंतु, तुलसी की लोकतांत्रिक भावधारा तो मानस के आरंभ से ही जहां-तहां अवकाश पाकर मुखर होती रहती है। राम राज्याभिषेक के प्रसंग में तुलसी ने शासन के जिस रूप का संकेत दिया है, उसमें राजा दशरथ सब की सम्मति का संज्ञान होने पर ही अपने पुत्र राम को युवराज बनाने का विचार करते हैं :

सब कें उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।

आप अछत जुबराज पद, रामहि देउ नरेसु।।[7]

स्पष्ट है कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करने का विचार इसलिए कर रहे हैं क्योंकि राम उनके सेवक, मंत्री और प्रजाजनों सहित सबको प्रिय हैं। संभव है कि यदि राम सर्वप्रिय नहीं होते और भरत-लक्ष्मण आदि किसी अन्य राजकुमार को यह जनस्वीकृति प्राप्त होती तो केवल राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने से राम को राज्य नहीं मिलता अपितु सर्वप्रिय राजकुमार के अभिषेक का विचार किया जाता। राम के ही पूर्वज राजा सगर ने अयोग्य होने के कारण अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजस का त्याग कर प्रजा के प्रिय अपने पौत्र अंशुमान को राजा बना दिया था।[8] भारतीय परम्परा में ऐसे और भी उदाहरण मिलते हैं। तुलसीदास ने भी राम राज्याभिषेक के उक्त वर्णन के माध्यम से भारतीय परंपरा में उपस्थित जनमत के महत्व की राजनीतिक दृष्टि के प्रति ही समर्थन व्यक्त किया है।

समानता का आदर्श

समानता का प्रश्न आने पर अक्सर तुलसीदास आलोचना की धार पर रख दिए जाते हैं। उन्हें वर्ण-व्यवस्था के समर्थक से लेकर स्त्री-विरोधी तक सिद्ध करने की चेष्टाएँ होती रहती हैं। इस तरह की बात करने वाले लोग अक्सर तुलसी के राम की समतामूलक दृष्टि को भूल जाते हैं। जो राम चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के पुत्र हैं और वर्ण से क्षत्रिय हैं, वे तत्कालीन समाज में स्वयं से हर प्रकार हीन माने जाने वाली विभिन्न जातियों/जनजातियों के साथ समानता पर आधारित संबंधों की स्थापना करते हैं। निषादराज गुह संग 'तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता'[9] के द्वारा भ्रातृत्व का सम्बन्ध स्थापित करना हो या भीलनी शबरी के अतिथि

---

7 रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा – 1, गीताप्रेस

[8] श्रीमद्भागवत महापुराण, नवम स्कंध, अध्याय – 8, गीताप्रेस

[9] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – 19.3

बनकर भक्ति के धरातल पर समता का सुंदर आदर्श गढ़ना हो या वानर जाति के राज्य से वंचित नायक सुग्रीव और राक्षस जाति के विभीषण से मित्रता कर जाति-पांति के समस्त भेदभाव से ऊपर मानवीय संबंधों की उद्घोषणा करनी हो, राम के ये समस्त कर्म समतामूलक समाज की ही प्रस्तावना करते हैं। समतामूलक समाज का यह स्वप्न तुलसी के रामराज्य में पूर्णतः साकार होता है, जिसे रेखांकित करते हुए मूर्धन्य आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं, "तुलसी का रामराज्य वर्णहीन नहीं है। लेकिन सरयू के राजघाट पर चारों वर्ण एकसाथ स्नान जरूर करते हैं : राजघाट सब विधि सुंदर वर। मज्जहिं तहां बरन चारिउ नर।।"[10]

स्त्री-विषयक प्रसंगों में 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।' की ढोल पीटते हुए तुलसी की खूब लानत-मलानत की जाती है। लेकिन ऐसा करते हुए यह भुला दिया जाता है कि यह चौपाई रामचरितमानस में समुद्र द्वारा कही गई है, जो कि एक नकारात्मक पात्र है और नकारात्मक पात्रों के मुख से कभी रचनाकार नहीं बोलता। रचनाकार की वाणी तो सकारात्मक पात्रों के कंठ में ही विराजती है। यहाँ यह सिद्ध करने की कोई चेष्टा नहीं की जा रही कि स्त्रियों के प्रति तुलसी की दृष्टि पूर्णतः आधुनिक और प्रगतिशील थी। परंतु, यह अवश्य ध्यान देने योग्य है कि प्रायः अपनी युगीन सीमा में रहते हुए भी तुलसी ने स्त्रियों को लेकर अवसरानुसार कहीं प्रशंसा तो कहीं करुणा का भाव ही व्यक्त किया है। स्त्री-विरोध का भाव उनमें कहीं नहीं है। तुलसी की स्त्री-विषयक दृष्टि का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, "एक तरफ पति-सेवा का उपदेश, तो दूसरी तरफ पराधीन नारी के लिए स्वप्न में भी सुख न मिलने का क्षोभ; यह कला तुलसीदास को छोड़कर और कहीं नहीं है।"[11]

इसके बाद भी तुलसीदास को जहां कहीं अवसर मिला है, वे स्त्री की एक सशक्त छवि प्रस्तुत करने से नहीं चूके हैं। तीनों लोकों को रुलाने वाले, देव-शक्तियों के लिए भी भयकारी राक्षसराज रावण के समक्ष उसके समस्त प्रलोभनों को अस्वीकार करते हुए उसे कठोर बातें कहने वाली सीता के चरित्र में शक्तिस्वरूपा स्त्री की छवि के ही दर्शन होते हैं।

तुलसी द्वारा पतिव्रता नारी के महिमामंडन की चर्चा भी खूब की जाती है, परंतु,, यह बिसरा दिया जाता है कि उनके रामराज्य में पुरुषों के लिए भी एक-पत्नीव्रत का नियम निर्धारित है : एक नारिब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पतिहितकारी।।[12] ध्यान देने की बात यह भी है कि 'एकपत्नीव्रत' का आदर्श तुलसी उस युग में रख रहे थे, जब स्त्री को भोग की वस्तु मानते हुए बहुपत्नी का चलन लगभग आम था। यह तुलसी की

[10] परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ – 86, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2018

[11] पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या – 88

[12] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 21.8

लोक की विसंगतियों का परिष्कार करने वाली दृष्टि ही थी कि ऐसे युग में उन्होंने पति और पत्नी दोनों के लिए समान नियम की घोषणा कर समानता के मूल्य को समर्थन देने का साहस दिखाया। अंततः हमें इसपर भी विचार करना चाहिए कि जो कवि 'सीय राममय सब जग जानी'[13] के भाव से समस्त जड़-चेतन को सीताराम का अंश मानते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करने की बात कहता हो, वो किसी भी प्रकार के भेदभाव और विषमता का समर्थक कैसे हो सकता है ?

मर्यादित स्वतंत्रता की प्रस्तावना

तुलसी व्यक्ति-स्वतंत्रता के विरोधी नहीं हैं, परंतु उनके युग की जो परिस्थितियां थीं उसमें स्वतंत्रता ने मर्यादाहीन होकर स्वच्छंदता का रूप ले लिया था। सामाजिक-राजनीतिक सभी क्षेत्रों में मर्यादाओं का हनन चरम पर था। स्त्री के लिए तो यह समय और भी कठिन था, क्योंकि उसे भोज्या के भाव से देखते हुए पुरुष-वर्ग अपनी मर्यादाओं को भूल जाता था। यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण-रेखा का प्रसंग न होने के बावजूद तुलसीदास ने रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में इसका उल्लेख कर दिया है।[14] यह सीता के सुरक्षा की रेखा थी, जिसकी आवश्यकता तुलसी के युग की सीताओं यानी स्त्रियों को भी थी, क्योंकि उस समय का शासक समाज ही रावण हो रहा था। ऐसे विकट समय में भी तुलसी ने स्वतंत्रता के मूल्य का निषेध नहीं किया अपितु मर्यादित स्वतंत्रता की प्रस्तावना की।

तुलसी के राम भी स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। उनके समक्ष समर्थक ही नहीं, विरोधी भी अपनी बात कह सकते हैं। युद्ध के काल में वे सबसे मंत्रणा करके ही कोई निर्णय लेते हैं और अपने आसपास ऐसा वातावरण रखते हैं, जिसमें हर कोई खुलकर अपनी बात रख सके। यही कारण है कि रावण द्वारा त्यागे जाने के पश्चात् उसका भाई होते हुए भी विभीषण राम के पास आने का साहस जुटा पाते हैं। तीन दिन तक मार्ग मांगने के बाद भी जब समुद्र उनकी नहीं सुनता तो राम क्रोध अवश्य दिखाते हैं, परंतु, जब भयभीत भाव से समुद्र उपस्थिति होता है तो उसपर प्रहार नहीं करते अपितु धैर्य और शांति के साथ उसका पक्ष सुनते हैं। रावण के शासन में अभिव्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता नहीं है। उसने अपने आसपास भय का ऐसा वातावरण बना रखा है कि विरोधी तो दूर उसके मित्र और मंत्री तक उसे उचित सलाह देने का साहस नहीं जुटा पाते। उचित सलाह देने पर वह अपने नाना माल्यवान से लेकर भाई विभीषण तक का अपमान कर देता है। स्पष्ट है कि राम लोकतांत्रिक शासक के आदर्श हैं, वहीं रावण अधिनायकवादी राजतंत्र का चरम उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस अर्थ में, राम-रावण संघर्ष का परिणाम अधिनायकवादी राजतंत्र पर लोकतंत्र की विजय का आख्यान भी कहा जा सकता है।

---

[13] रामचरितमानस, बालकाण्ड, 7.2

[14] रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, 35.2

सीता-परित्याग का प्रसंग रामराज्य में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आदर्श का आख्यान ही है। यद्यपि तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में इस प्रसंग का वर्णन नहीं किया है। केवल एक स्थान पर 'सिय निंदक अघ ओघ नसाए'[15] जैसे अस्पष्ट संकेत करके रह गए हैं। परंतु, रामाज्ञा प्रश्न[16] और गीतावली[17] में उन्होंने इस प्रसंग का स्पष्ट उल्लेख किया है। गीतावली में तो कई पदों में इस प्रसंग का सविस्तार वर्णन मिलता है। वहीं रामज्ञा प्रश्न में दोहा आता है –

सती सिरोमनि सीय तजि, राखि लोग रूचि राम।

सहे दुसह दुःख सगुन गत, प्रिय बियोग परिणाम।

अब प्रजा की इच्छा का सम्मान करते हुए राजा द्वारा अपनी पत्नी का त्याग कर देना, न केवल रामराज्य में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के स्तर को दिखाता है अपितु प्रजा के प्रति राजा की प्रतिबद्धता का भी द्योतक है।

राजधर्म

तुलसी के युग का शासक-वर्ग राजधर्म को भूल चुका था। प्रजा पीड़ा में थी, परंतु, शासकों और उनके सामंतों को अपने भोग-विलास से ही अवकाश नहीं था। शासकों के लिए नागरिकों की उपयोगिता केवल भारी-भरकम कर वसूलने के लिए थी। कर लेने के पश्चात् नागरिक-हितों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। परिणामतः शासक-वर्ग सम्पन्न होकर विलासिता में डूबा था, तो वहीं साधारण जन अन्न के लिए भी मुहताज होते जा रहे थे। देश में विदेशी आक्रांताओं के आने के बाद जो राजतंत्र स्थापित हुआ था उसमें ऐसा होना कोई बहुत विचित्र बात नहीं थी, परंतु, तुलसी को वाल्मीकि रामायण सहित भारतीय ज्ञान-परंपरा से राजतंत्र के जिस धर्माधारित स्वरूप का बोध प्राप्त हुआ था, उसके परिणामस्वरूप उन्होंने रामराज्य के रूप में राजतंत्र का वो उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया जिसे गांधीजी ने लोकतंत्र का सच्चा आदर्श माना था।[18]

---

[15] पूर्वोक्त, 15.3

[16] रामाज्ञा प्रश्न, षष्ठ सर्ग, सप्तक – 6, दोहा – 4-5, गीताप्रेस

[17] गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद – 25-30, गीताप्रेस

[18] यंग इंडिया, 19 सितंबर 1929

तुलसी के यहाँ राजधर्म में प्रजा और प्रजा का हित सर्वोपरि है। जिस प्रकार से भी प्रजा का कल्याण हो, वह सब राजा का कर्तव्य है। प्रजा-हित का ध्यान न रखने वाले राजा के लिए तुलसी ने लिखा है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी

सो नृप अवसि नरक अधिकारी[19]

तुलसी के युग की कर-प्रणाली जनता के शोषण पर आधारित थी। शासक-वर्ग मनमाने कर लगाकर लोगों से धन उगाही करता था और उस धन का व्यय प्रजा-हित में नहीं, शासकों के भोग-विलास में ही होता था। तुलसी कर लेने के विरोधी नहीं हैं, परंतु, उनकी कर नीति साधारण जनों के शोषण पर नहीं, सर्वसमाज के पोषण पर आधारित थी। तुलसी ने जिस कर प्रणाली की अवगाहना की है, वह आज के समय में भी आदर्श मानी जा सकती है :

बरषत हरषत लोग सब, करसत लखे न कोइ

तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सम होइ[20]

तुलसी न्यायपूर्ण शासन की बात करते हैं। ऐसी शासन-नीति पर उनका बल है, जिससे सबका समान रूप से कल्याण सुनिश्चित हो। समानता पर आधारित न्याय का शासन तुलसी के राजधर्म की प्रमुख विशेषता है। इसका निर्देशन करते हुए स्वयं राम के मुख से वे कहलवाते हैं :

मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहुं एक

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक[21]

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि आज से पांच शताब्दी पूर्व तुलसीदास ने राजधर्म के जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया था, वह वर्तमान लोकतंत्र के लिए भी न केवल प्रासंगिक अपितु आवश्यक हैं। तुलसी का राजधर्म उनके मानस में उपस्थित लोकतांत्रिक चेतना का ही तद्युगीन प्रस्फुटन है।

निष्कर्ष

विचार करें तो तुलसी को जितनी ख्याति और प्रतिष्ठा भक्त कवि के रूप में मिली है, उसकी तुलना में उनके अन्य आयामों पर कम ही चर्चा हो पाई है। वे भक्त कवि तो निस्संदेह हैं, परंतु, इसका यह अर्थ नहीं

[19] रामचरितमानस, बालकाण्ड – 70,6

[20] दोहावली, दोहा - 508, गीताप्रेस

[21] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा - 315

कि भक्ति रस में डूबे वे अपने समय और समाज के प्रति पूर्णतः उदासीन थे। कबीर की ही तरह तुलसी में भी गहरा युगबोध उपस्थित था। जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोकनायक थे और भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों में उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नहीं था।"[22]

वस्तुतः तुलसी की भक्ति लोक के कल्याण का उपक्रम है। आदर्श मानव के सब गुणों को धारण करने वाले और मानव-कल्याण में समर्थ राम उनके आराध्य हैं। मानवता का कल्याण तुलसी के महाकाव्य की भावभूमि है। रामविलास शर्मा के शब्दों में : "तुलसी ने प्राचीन महाकाव्यों की मानववादी परंपरा को आगे बढ़ाया है। 'न मानुषात श्रेष्ठतरम हि किंचित' पर रामचरितमानस मानो सजीव भाष्य है। अनेक बार तुलसी ने भक्त को भगवान् से बड़ा बतलाया है, इससे अधिक वह मानव-प्रेम का प्रमाण क्या दे सकते थे ?"[23]

तुलसी का साहित्य, जीवन का साहित्य है जिसमें मानव-जीवन की विविध छटाएँ उपस्थित हैं। अतः उसे समग्र रूप में समझने के लिए आवश्यक है कि तुलसी को भक्ति कवि के साथ-साथ अपने काव्य के माध्यम से लोक-कल्याण की प्रस्तावना करने वाले लोकनायक के रूप में भी समझा जाए।

पीयूष कुमार दुबे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़,

दिल्ली विश्वविद्यालय

[22] हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ – 101, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2021

[23] परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ – 92, राजकमल प्रकाशन, संस्करण - 2018